Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 3, May-2018, ISSN 2230-7540

प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य परंपरा

Vashundhara[1]* Dr. Ved Prakash Sharma[2]

[1] PhD Scholar, Department of Education, Maharaj Vinayak Global University, Jaipur, Rajasthan

[2] Research Director, Department of Education, Maharaj Vinayak Global University, Jaipur

सार – वेद शब्द का अर्थ ज्ञान होता है। वैदिक कालीन शिक्षा से तात्पर्य उस ज्ञान से है जो वेदो में सुरक्षित है तथा जो उस काल में प्रयोग किया जाता था। भारत की आधारभूत संस्कृति का ज्ञान इन्हीं प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में सुरक्षित है। वैदिक कालीन शिक्षा न तो पुस्तकीय ज्ञान में विश्वास रखती थी और न ही जीवकोपार्जन का साधन थी, यह तो पूर्ण रूप से नैतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान का सोपान थी। उस समय की शिक्षा का अर्थ था कि व्यक्ति को इस प्रकार से आत्म प्रकाशित किया जाय कि उसका सर्वांगीण विकास हो सके। श्रवण मनन तथा निदिध्यासन आदि शिक्षा प्राप्त करने के साधन थे। वेद जो लिखित रूप से संकलित नहीं किये गये केवल कण्ठस्थ ही कराये जाते थे, श्रुति कहलाये। इस प्रकार वैदिक साहित्य में शिक्षा शब्द का प्रयोग विद्या ज्ञान तथा विनय आदि अर्थों में किया जाता था। भारतीय संस्कृति में गुरु को अत्यधिक सम्मानित स्थान प्राप्त है। भारतीय इतिहास में गुरु की भूमिका समाज को सुधार की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक के रूप में होने के साथ क्रान्ति को दिशा दिखाने वाली भी रही है। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर माना गया है.

कुंजी शब्द – प्राचीन शिक्षा, पद्धति, गुरु-शिष्य, परंपरा

---------------------------------X--------------------------------

प्रस्तावना

राजा रवि वर्मा द्वारा 1904 में बनाया हुआ - शिष्यों के साथ आदि शंकराचार्य गुरु-शिष्य परम्परा आध्यात्मिक प्रज्ञा का नई पीढ़ियों तक पहुंचाने का सोपान। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरु (शिक्षक) अपने शिष्य को शिक्षा देता है या कोई विद्या सिखाता है। बाद में वही शिष्य गुरु के रूप में दूसरों को शिक्षा देता है। यही क्रम चलता जाता है। यह परम्परा सनातन धर्म की सभी धाराओं में मिलती है। गुरु-शिष्य की यह परम्परा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है, जैसे- अध्यात्म, संगीत, कला, वेदाध्ययन, वास्तु आदि। भारतीय संस्कृति में गुरु का बहुत महत्व है। कहीं गुरु को "ब्रह्मा-विष्णु-महेश" कहा गया है तो कहीं 'गोविन्द'। 'सिख' शब्द संस्कृत के 'शिष्य' से व्युत्पन्न है।

'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और श्रु" शब्द का अर्थ है प्रकाश ज्ञान। अज्ञान को नष्ट करने वाला जो ब्रहम रूप प्रकाश है, वह गुरु है। आश्रमों में गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह होता रहा है। भारतीय संस्कृति में गुरु को अत्यधिक सम्मानित स्थान प्राप्त है। भारतीय इतिहास में गुरु की भूमिका समाज को सुधार की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक के रूप में होने के साथ क्रान्ति को दिशा दिखाने वाली भी रही है। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर माना गया है.

"गुरुर्ब्रहमा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात् परं ब्रहम तस्मै श्री गुरुवे नमः"

प्राचीन काल में गुरु और शिष्य के संबंधों का आधार था गुरु का ज्ञान, मौलिकता और नैतिक बल, उनका शिष्यों के प्रति स्नेह भाव, तथा ज्ञान बांटने का निःस्वार्थ भाव. शिक्षक में होती थी, गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा, गुरु की क्षमता में पूर्ण विश्वास तथा गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण एवं आज्ञाकारिता. अनुशासन शिष्य का सबसे महत्वपूर्ण गुण माना गया है.

आचार्य चाणक्य ने एक आदर्श विद्यार्थी के गुण एस प्रकार बताये हैं-

"काकचेष्टा बको ध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च ।

अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणम् "।।

गुरु और शिष्य के बीच केवल शाब्दिक ज्ञान का ही आदान प्रदान नहीं होता था बल्कि गुरु अपने शिष्य के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता था। उसका उद्देश्य रहता था कि गुरु उसका कभी अहित सोच भी नहीं सकते. यही विश्वास गुरु के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा और समर्पण का कारण रहा है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण जी ने गुरु-शिष्य परम्परा को 'परम्पराप्राप्तम योग' बताया है। गुरु-शिष्य परम्परा का आधार सांसारिक ज्ञान से शुरू होता है,परन्तु इसका चरमोत्कर्ष आध्यात्मिक शाश्वत आनंद की प्राप्ति है,जिसे ईश्वर -प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति भी कहा जाता है। बड़े भाग्य से प्राप्त मानव जीवन का यही अंतिम व सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए।" गुरु एक मशाल है, शिष्य प्रकाश

प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा शिक्षा शब्द का प्रयोग व्यापक तथा सीमित दोनों अर्थों में किया गया है। डा. ए. एस. अल्तेकर के अनुसार व्यापक अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति को सभ्य व उन्नत बनाना है। इस दृष्टि से शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। सीमित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय उस औपचारिक शिक्षा से है जो व्यक्ति को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व छात्र रूप में गुरु से प्राप्त होती है। इस प्रकार वैदिक कालीन शिक्षा से तात्पर्य व्यक्ति का शारीरिक,मानसिक बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास है।

1. वैदिक कालीन शिक्षा महत्व प्राचीन भारतीयों का विचार था कि शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा व्यक्ति के सब संशयों का उन्मूलन तथा सब बाधाओं का निवारण हो जाता है ।वह वास्तविक शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति की बुद्धि विवेक एवं कुशलता में वृद्धि होती है ।शिक्षा ही जीवन यथार्थ के महत्व को समझने की क्षमता प्रदान करती है जिससे व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति होती है। वैदिक कालीन शिक्षाविदों ने शिक्षा के वास्तविक महत्व को स्वीकार किया तथा घोषणा की कि विद्ययामृतमश्नुते। अर्थात् विद्या से अमृतत्व, परमानन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। वैदिक कालीन ऋषियों का ध्यान लौकिक दिशा की ओर भी था इसलिए उन्होंने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से शिक्षा की व्यवस्था की थी

अन्धतमः प्रविशन्ति येड्विद्यामुपासते।

त्तो भूयडव ते तमो येडविद्ययारता।

अर्थात् वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं जो मात्र विद्या की उपासना करते हैं। और वे एकांगी होते हैं जो मात्र विद्या में रत रहते हैं। अतः भौतिक, आध्यात्मिक दोनों विद्याओं की उपासना की गई थी। डा. ए. एस. अल्तेकर ने इसके महत्व पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है -

शिक्षा को रोशनी और स्वर का एक स्रोत माना जाता था, जो हमारे शारीरिक मानसिक बौद्धिक और आध्यात्मिक पित्रों और संकायों के प्रगतिशील और सामंजस्यपूर्ण विकास के द्वारा हमारी प्रकृति को बदल देता है और आनंदित करता है

अध्ययन के उद्देश्य

1. प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य परंपरा का अध्ययन
2. वैदिक शिक्षा का विस्तार क्षेत्र का अध्ययन

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था

वैदिक काल पूर्व वैदिक काल अथवा ऋग्वैदिक तथा उत्तरवैदिक (जो यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, के अतिरिक्त ब्राहमण, आरण्यक एवं उपनिषद् आदि की रचना काल था) के भेद से दो भागों में बंटा था भारतीय परम्परा के अनुसार ब्रहमा द्वारा ऋषियों को मंत्रों का प्रकाश दिया गया। वे मंत्र उस ऋषि के पुत्रों एवं शिष्यों के माध्यम से कुल की परम्परा में सुरक्षित रहते थे। इस प्रकार प्रत्येक ऋषि कुल एक लघु विद्यालय के समान था जहाँ रहकर विद्यार्थी को ब्रहमचर्य का पालन करना पड़ता था। आचार्यो ब्रहमचर्येण ब्रहममचारिणमिच्छते' आचार्य उपनयन संस्कार द्वारा ब्रहमाचारी को अपनी रक्षा में लेता था।

आचार्यो उपनयमानो ब्रहमचारिणं वृणुतेगर्भन्तः

"गुरूकुलों में ऋषियों द्वारा पाठ को कण्ठस्थ कराया जाता था। प्रवचन तथा उच्चारण पर बल दिया जाता था तथा तप, आत्मदर्शन की युक्ति, प्रवचन तथा उच्चारण पर बल दिया जाता था।" मानसिक चिन्तन तथा ध्यान से ज्ञान प्राप्त कराया जाता था। उत्तरवैदिक काल में सम्भवतः लेखन काल में भी उन्नति होने लगी थी। शिक्षण पद्धति में पाठों का उच्चारण, भाष्य व्याख्या तथा वाद-विवाद सम्मिलित थे। जो देश में वास्तविक ज्ञान का प्रचार करने वाले 'चरक' विद्वान थे वो देश में वास्तविक ज्ञान का प्रचार करते थे। शिक्षा के निमित्त पंचाल परिषद् नामक संस्थाएं थीं। इसके अतिरिक्त विद्वत्सभाओं का भी आयोजन हुआ करता था जैसे – राजा जनक की सभा जिसमें प्रमुख विद्वान याज्ञवल्क्य थे।

शिक्षकों की स्तर वैभिन्नता

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था विभिन्न श्रेणियों में गुरूओं का विभाजन करती थी। शिक्षकों के पर्याय के रूप में कुलपति, आचार्य, उपाध्याय, प्रवक्ता, पाठक, अध्यापक, श्रोत्रिय, गुरू, ऋत्विक, चरक आदिी का विभाजन उनकी योग्यतानुसार होता था। आधुनिक सन्दर्भ में आचार्य प्रोफेसर होता है, पाठक तथा प्रवाचक रीडर होते हैं, उपाध्याय लेक्चरर होते हैं, श्रोत्रिय प्रवक्ता होता है। इसी प्रकार विभिन्न विषयों के विभिन्न विशेषज्ञ होते थे। वैदिक समाज में आचार्य अथवा गुरू का स्थान अत्यन्त प्रतिष्ठित था। वह समाज को शिक्षिवत करने के साथ वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान भी प्रदान करता था।

शिक्षार्थियों का ब्रहमचर्य जीवन

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त पर आधारित थी। उपनयन संस्कार द्वारा आचार्य शिष्य को दूसरा जीवन देकर द्विज बनाता था। वह मृगचर्म तथा मेखला धारण करता था तथा लम्बे बाल रखता था। इस प्रकार छात्र सादा, सरल, संयमी जीवन व्यतीत करते थे। छात्र के लिए ब्रहमचारी, अन्तर्वासी, शिष्य, माणवक आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। ब्रहमाचारियों के लिए भिक्षा, आचमन, प्राणायाम, मार्जन, गायत्रीपाठ, वेदाध्यान, अभिवादन आदि कार्यों का विधान था। भिन्न-भिन्न शाखाओं के विशिष्टता प्राप्त शिक्षार्थियों के लिए अलग-अलग संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता था। जैसे - तित्तिरि आचार्य से प्रोक्त तैत्तिरीय शाखा के विद्यार्थी तत्तिरीय कहलाते थे। शिक्षार्थी का अध्ययन काल 12 वर्ष से लेकर 32 वर्ष थायह जीवनपर्यन्त भी हो सकता था।

वैदिक शिक्षा का विस्तार क्षेत्र

वैदिक शिक्षा का अपार भण्डार तत्कालीन साहित्य तथा उसकी शाखाओं एवं उपशाखाओं में बंटा था। ऋग्वेद के मन्त्रों का संकलन संहिता है। संहिताओं में सामवेद, यजुर्वेद तथा अर्थवेद प्रमुख हैं जो ऋग्वेद के आधार पर ही विकसित की गई हैं। तत्पश्चात् ब्राहमण, आरण्यक तथा उपनिषदों का विस्तार हुआ ब्राहमण ग्रन्थ गद्य साहित्य के सर्वप्राचीन ग्रन्थ हैं जिनमें एतरेय कौषीतकि तथा तैत्तिरीय प्रमुख हैं। उपनिषदों को ही वेदान्त कहा जाता है। स्वाध्याय के अन्तर्गत संहिताओं एवं इतिहास, पुराण कथाओं का अध्ययन किया जाता था। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार- चारों वेद, पांचवें वेद (व्याकरण) अंकगणित (देवलक्षण विद्या) निधि (उत्खनन विद्या), देवविद्या (निरूक्त), ब्रहमविद्या (छन्द एवं ध्वनि विद्या), भूतविद्या (क्षत्र विद्या), धनुर्वेद (नक्षत्र विद्या,सर्व विद्या) देवजन विद्या (नृत्य, गायन), आदि की विधाएं नारद ने सीख ली थीं। इसी के समान सूची बृहदारण्यक उपनिषद् में भी पायी जाती है।

शिक्षण विधि

वैदिक कालीन शिक्षण विधि मौखिक एवं प्रश्नोत्तर प्रधान थी। इसे प्रत्यक्ष विधि के नाम से भी जाना जाता था। शिक्षा का स्वरूप पूर्णतः व्यक्तिगत हुआ करता था। विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में मन्त्रों का पाठ एवं उसकी व्याख्या करते थे साहित्यय काव्य तथा न्याय के क्षेत्र में निरन्तर वाद-विवाद खण्डन तथा मण्डन विद्यार्थियों द्वारा किया जाता था जिससे विद्यार्थियों की प्रत्युत्पन्न मतित्व व वक्तृत्व का विकास होता था। राजनीति तथा नैतिकता की शिक्षा कथाओं के माध्यम से दी जाती थी जिसके व्याख्यान का निरूपण गुरू-शिष्य संवाद के माध्यम से होता था। यह शिक्षा निःशुल्क थी।

शिक्षा प्राप्त करके शिष्य गुरू को गाय, अन्न या अश्व किसी भी रूप में गुरू दक्षिणा देता था विद्यार्थियों की 25 वर्ष की ब्रहमचर्य की अवधि को उत्तरोत्तर विकास क्रम से सत्र एवं समय में विभाजित किया जाता था। जिस दिन अध्ययन बन्द रहता था उसे अनध्याय शब्द से संबोधित करते थे। अध्ययन की समाप्ति समापन कहलाती थी। अतः शिक्षा की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार होता था।

विनयपूर्ण अनुशासन विनयपूर्ण अनुशासन सम्पूर्ण वैदिक शिक्षा का केन्द्र बिन्दु था। आत्मज्ञान या ब्रहमज्ञान की प्राप्ति हेतु बालक में आत्मनियंत्रण की शक्ति परमावश्यक थी। यह शक्ति बालक को गुरू शिष्य के आत्मीय एवं मधुर सम्बन्धों से प्राप्त होती थी। अतः दोनों का आचरण,व्यवहार आदर्श तथा अनुकरण पर आश्रित था। दानों ही ओर से विनम्रता सिद्ध तथा साक्ष्य थी।

वैदिक शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अनुशासन आत्मानुशासन था। आत्मा की तुरीयावस्था की प्राप्ति हेतु लालायित शिष्य स्वयं को सर्वदा नियन्त्रित रखता था। इसके लिये ब्रहमाचारियों एवं आचार्यों के लिये निर्धारित नियम तथा संयम तत्कालीन शैक्षिक अनुसन्धान का द्योतक है। ब्रहमचारी के भिक्षा के लिये जाने पर यह कहने का विधान था कि महोदय भोजन दीजिये। “यह अनुशासन का प्रथम पाठ था। निरूक्त के श्विद्या सूक्त” में उल्लिखित है कि जो शिष्य विद्या को घृणा की दृष्टि से देखे,कुटिल एवं असंयमी हो ऐसे शिष्य को विद्या ज्ञान नहीं देना चाहिए किन्तु जो पवित्र, ध्यानमग्न, बुद्धिमान, ब्रहमचारी, गुरू के प्रति सत्य हो उसे शिक्षा देनी चाहिए। अध्ययन काल में विद्यार्थी को सिर के बाल मुड़ाने का भी अनुशासन था। इस सम्बन्ध में कई नियम बताये गये हैं। अभिवादन भी नित्य,

नैमित्तिक होता था। इस प्रकार सुदृढ़ आदर्शवाद भित्ति पर निर्मित वैदिक शिक्षा में आदर्शात्मक अनुशासन था।

ऋषि मुनि यह जान चुके थे कि जीवन का परम लक्ष्य मोक्षप्राप्ति है जो मृत्यु के रहस्यों को जानकर हो सकती है उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन आत्मा परमात्मा के ऐक्य को समझने में ही लगा दिया। डा. ए .एस. अल्तेकर ने लिखा है – "ईश्वर भक्ति एवं धार्मिकता की भावना, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण वैदिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य थे।

वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करना है। इसके लिये आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, आत्मसंयम, न्याय आदि गुणों का विकास करना है। शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करते हुए प्रो. शिवदत्त ज्ञानी ने लिखा है – "प्राचीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य मनुष्य को निसर्ग सिद्ध शक्तियों का सम्यक विकास करके उसे सच्चे अर्थ में मनुष्य बनाना था। जिससे वह जीवन की पहेलियों को सुलझाने में समर्थ हो सके। वैदिक साहित्य में शिक्षा का कोई उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता है। अनुसंगिक ग्रन्थों की सहायता से तत्कालीन शिक्षा उद्देश्यों को बताया गया है।

मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान

वैदिक कालीन शिक्षा में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान था। मनुष्य के जीवन में धार्मिक वृत्तियों का गरिमामय स्थान है। विद्यार्थियों के जीवन में भक्ति तथा धर्म का विकास शिक्षा द्वारा होता है। वैदिक काल में धर्म का सर्वाधिक आदर था। इसके बारे में कहा गया -

'धारणात् धर्माभिप्राहुः धर्मो धारयते प्रजा।'

अर्थात् जिसको धारण करने से लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति हो। इस काल की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ईश्वरभक्ति तथा धर्म के नियमों का कठोरता से पालन करना था। इस उद्देश्यपूर्ति के लिए विभिन्न संस्कार थे। ब्रह्मचारी द्वारा दैनिक क्रिया, संध्योपासन, व्रतों का अनुपालन उसकी धार्मिक वृत्तियों के उत्थान में योग देते रहे हैं। शौच, पवित्रता, आचार, स्नान आदि तथा सन्ध्योपासना व्यक्ति का धर्म था।

"उपनीय गुरूः शिष्य शिक्षयेच्छौचमादितः

आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च।"

ब्रह्मचारी निष्ठापूर्वक धार्मिक निर्देशों का पालन करता थातथा शंका होने पर उसका निवारण करता था। धर्माधारित नियमों का पालन करते हुए लौकिक तथा पारलैकिक जीवन को समझ पाने में सक्षम था। वह आध्यात्म का ज्ञान भी धर्म द्वारा ही करता था। मनुष्य के जीवन से तप, दान, अहिंसा, सत्य वचन व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अनिवार्य माना गया क्योंकि ये धार्मिक प्रवृत्तियों के मूल थे।

मनुष्य को चारित्रिक शिक्षा देना

वैदिककालीन शिक्षा में विद्वान होने से श्रेयष्कर चरित्रवान होना था। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों के अनुसार तो मनुष्य के जीवन की सार्थकता चरित्र निर्माण के रहस्य में निहित है।

सच्चरित्रता को व्यक्ति का आभूषण माना गया था। चूंकि विद्यार्थी जीवन को मनुष्य के जीवन का प्रभात कहा जाता था अतः चरित्र निर्माण की दृष्टि से यह सर्वाधिक उपयुक्त काल था। जो धर्मवान तथा चरित्रवान था वही पण्डित था। व्यक्ति को सत् का पूर्ण ज्ञान हो जाने पर वह तदनुकूल आचरण करता था। अपने विद्यार्थी जीवन में व्यक्ति चरित्र निर्माण करते हुए अपने कर्मों का पालन नियमपूर्वक करता था। ब्रह्मचारी का जीवन तप तथा नियम का जीवन था अतः कहा गया है -

'ब्रहमचारी ब्रहम भ्राजष विभर्ति'

"तस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।"

समिधा तथा मेखला द्वारा अपने व्रतों का पालन करते हुए ब्रहमचारी धर्म तथा तप के प्रभाव से लोकों को समुन्नत करता था -

'ब्रहमचारी समिधा मेखलया,'

"धर्मेण लोकास्तपसा विभर्ति।"

यह माना गया है कि ब्रहमचर्यव्रत पालन से ही राजा राष्ट्र का निर्माण करता था। ब्रहमचर्य द्वारा ही आचार्य शिष्यों को दीक्षित करता था -

'ब्रहमचर्येण तपसा राजा राष्ट्र विरक्षति,

आचार्यो ब्रहमचर्येण ब्रहमचारिणामिच्छते।'

तप ब्रहमचर्य का आवश्यक अंग था। शौच, पवित्रता, स्नान, संध्योपासन इसके प्रमुख तत्व थे जिसके द्वारा चरित्र का उत्थान होता है। गुरूकुलों के उत्तम वातावरण, महान विभूतियों के आदर्शों के द्वारा छात्रों के चरित्र का निर्माण किया जाता। डा. वेदमित्र ने बताया है -

www.ignited.in

“The building of the character of student was deemed as one of essential objects of Education”

मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास

शिक्षा द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। शिक्षा से व्यक्ति विभिन्न कर्तव्यों का पालन करताहै। इससे व्यक्ति के अन्दर आत्मसंयम, आत्मविश्वास, आत्मविश्लेषण, आध्यात्मिकवृत्ति का उदय होता है।

वैदिक काल में माना गया है कि आत्मविश्वास होने पर ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो सकता है। इसी कारण वह गुरू के सान्निध्य में रहता था तथा गुरू उसमें आत्मविश्वास का विकास करता था।

शिक्षा प्रारम्भ से पूर्व ही बालक का आत्मविश्वास जागृत करने के लिए अग्नि से प्रार्थना की जाती थी वह छात्र पर अपनी दयादृष्टि रखें तथा उसकी वृद्धि, मेघा व शक्तिवृद्धि करें। अग्नि तेज का देवता था। अग्नि शिखाओं की भांति बालक को कीर्ति दे तथा यश सभी दिशाओं में फैले। अनेक देवताओं के पूजन से यह माना जाता था कि सभी देवतागण उसकी रक्षा करेंगे।

सवितृ बालक की मृत्यु से, रोगों से रक्षा करता था – “देव सवितरेव ते ब्रह्मचारी सा मा मृत।।” ब्रह्मचारी को आत्मसंयम की शिक्षा दी जाती थी जिसका अभिप्रायस आत्मनियंत्रण से था। उसे अपने इन्द्रियों को नियंत्रित करने की शिक्षा दी जाती थी जिससे बालक के व्यक्तित्व का विकास निर्बाध गति से होता था।

नागरिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन

वैदिककालीन शिक्षा का उद्देश्य बालकों को नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने योग्य बनाना भी था। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा उसे समाज में रहकर जीवन व्यतीत करना होता है

नीति सम्बन्धी जीवन

नीति शब्द से तद्वित का ढक् लगाकर नैतिक शब्द बना है जिसका अर्थ है – नीति सम्बन्धी। नैतिक शब्द अपने अर्थ में उन विषयों को समेट लेता है। जिसका तात्पर्य नीति से है।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही नीति की शिक्षा को महत्व दिया गया है। वैदिक काल में विद्यार्थी गुरूकुलों में रहते थे तथा समस्त अवगुणों से रहित हो गुरू के समीप बैठकर सदाचार की शिक्षा प्राप्त करते थे। सत्य, अहिंसा, तप आदि गुणों का विकास गुरू करते थे। उन्हें धर्मनीति सिखायी जाती थी। धर्म का परिवर्द्धन तथा संरक्षण करने की शिक्षा दी जाती थी इसके लिए चरित्र निर्माण भी आवश्यक था। उन्हें चित्तवृत्तियों का निरोध करना पड़ता था। जिसके विषय में डा. आर. के. मुखर्जी ने लिखा है – “The aim of Education was chittavritti nirodh; inhabitation of those activities of the mind by which it gets connected with the world of matter or object”

इस प्रकार मनुष्य का नैतिक विकास शिक्षक का परम कर्तव्य होता था। ऋग्वेद में वरूण को नीति का देवता माना गया जो अत्यन्त कठोर है।

निष्कर्ष

वैदिक शिक्षा प्रणाली अपने मूल रूप में अनेक शताब्दियों तक मामूली परिवर्तनों के साथ प्रचलित रही तथा अपनी महत्वपूर्ण व सार्थक विशेषताओं के फलस्वरूप यह शिक्षा प्रणाली तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने में सफल सिद्ध हुई। वैदिक काल में हिन्दुओं के अनेक महत्वपर्ण ग्रन्थों की रचना हुई तथा अनेक महान विचारकों व सत्यान्वेषकों ने अपने बौद्धिक चातुर्य का योगदान दिया। परन्तु कालान्तर में वैदिक शिक्षा प्रणाली में अनेक दोष आने लगे तथा धीरे-धीरे ब्राहमण वर्ग का शिक्षा व्यवस्था पर आधिपत्य होने लगा। ब्राह्मणों के शिक्षा व्यवस्था पर नियन्त्रण हो जाने के फलस्वरूप शिक्षा-व्यवस्था रूढ़िवादी, औपचारिक तथा वर्ग विशेष के लिए सीमित हो गई। परिणामतः यह समाज की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हो गई। वैदिक कालीन शिक्षा की प्रमुख कमियों को निम्न ढंग से सूचीबद्ध किया जा सकता है - धर्म को अत्यधिक महत्व (Immense Importance to Religion)- वैदिक शिक्षा में धर्म को अत्यन्त महत्व दिया जाता था। शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था धार्मिक विचारों से प्रभावित होती थी। शिक्षा के उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रमों का निर्धारण भी धार्मिक आदर्शों के अनुरूप किया जाता था। छात्र प्रायः धार्मिक ग्रन्थों तथा कर्मकाण्डों का अध्ययन करते थे। धर्म पर आधारित इस शिक्षा व्यवस्था ने शैक्षिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंतर्राष्ट्रीय रेफरी ने समीक्षित और Indeied Print Monthly Journal www.raijmr.com RET एकेडमीज फॉर इंटरनेशनल जर्नल्स ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च RAIJMR

2. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन सब सब्जेक्ट्स इन मल्टी लैंग्वेजेज वॉल्यूम- 3 इश्यू: 9 ऑक्टोबारः 2015 लेखक: शोभना त्रिपाठी सुबजेक्टः एजुकेशन

3. अल्तेकर ए. एस. एजूकेशन इन एन्शियेण्ट इण्डिया

4. मनुस्मृति 2/69

5. अथर्ववेद 11/5/24

6. अथर्ववेद 11/5/4

7. अथर्ववेद 11/5/17

8. आश्वालन गृहसूत्र 1/20/6

9. मुखर्जी आर. के. एजूकेशन इन एन्शियेण्ट इण्डिया. पृ. 55-56

10. बाशम ए. एल. अद्भूत भारत पृ. 193

11. द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली कृष्ण मोहन. प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 137

12. अंतर्राष्ट्रीय रेफरी ने समीक्षित और Indeied Print Monthly Journal www.raijmr.com RET एकेडमीज फॉर इंटरनेशनल जर्नल्स ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च RAIJMR

Corresponding Author

Vashundhara*

PhD Scholar, Department of Education, Maharaj Vinayak Global University, Jaipur, Rajasthan